अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

मासिक पत्रिका

अप्रैल-2023

(अंक-11)

अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ. जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेंद्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

अनन्य
मासिक पत्रिका
अप्रैल-2023 (अंक-11)
भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ॰ जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेन्द्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

तकनीकी सलाहकार
बालेन्दु शर्मा दाधीच

संपादन सहयोग
आभा खरे / स्वरांगी साने

व्यवस्था
अमित खरे / गीता घिलोरिया

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के अन्यत्र उपयोग हेतु लेखक / प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित सामग्री हेतु सम्बंधित लेखक पूरी तरह से उत्तरदायी होंगे।

संपर्क
रचनाकार अपनी रचनाएँ अनन्य में प्रकाशनार्थ यहाँ भेजे : sampadak.ananya@gmail.com

पाठक अपनी प्रतिक्रियाएँ और सुझाव यहाँ भेजें
pratikriya.ananya@gmail.com

Artist: Marcel Duchamp's, *France,* LHOOQ Mona Lisa with added moustache and beard in 1919

Painter and sculptor Marcel Duchamp (1887-1968) has a rather quirky sense of humour. The French-American, who was one of the pioneers of Dada, a movement that questioned long-held assumptions about what art should be, and how it should be made, is in the spotlight—once again—for his reproduction of Leonardo da Vinci's most famous work, the Mona Lisa.

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

संपादकीय **06**
डॉ॰ जगदीश व्योम

गीत/नवगीत : वीरेंद्र आस्तिक **07**
तीन नवगीत

मुकरियाँ : सुधा राठौर **09**

कहानी : गीता श्री **12**
'सलमा सितारा जड़ी मेरी साड़ी'

गीत/नवगीत : सोनम यादव **24**
दो नवगीत

लघुकथा : किशोर श्रीवास्तव **26**
दो लघुकथाएँ

साहित्यिक धरोहर : पूर्णसिंह **28**
'अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन'

कला : रवीन्द्र त्रिपाठी **32**
सांस्कृतिक बहुलता और द्वैवार्षिकी

पाठकीय प्रतिक्रियाएं 39

चित्र / चित्रकार : वंदना कुमारी 40 / **पृष्ठ भाग**
इन डीप फैंटसी / 60x54 इंच, ऐक्रेलिक ऑन कैनवस / 2022

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप ऑडिओ रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप विडियो रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

दो शब्द...

अनन्य का यह अंक आपके समक्ष है। इस अंक में हमने प्राचीन काल से लोक समाज में प्रचलित विधा 'मुकरी' को भी शामिल किया है। मुकरियाँ सहित इस अंक की रचनाएँ आपको कैसी लगीं, यदि पत्र लिखकर बता सकें तो हमें आगामी अंकों की गुणवत्ता को सुधार करने में सहयोग मिल सकेगा।

अनन्य के इस अंक से हम 'साहित्यिक धरोहर' शीर्षक से एक नया कॉलम प्रारम्भ कर रहे हैं। इसके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध पत्र पत्रिकाओं के पुराने अंक, महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथों आदि में प्रकाशित महत्वपूर्ण साहित्यिक सामग्री में से किसी एक रचना को प्रकाशित किया जाएगा। इस अंक में सुप्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के 1913 अंक में प्रकाशित हुए सरदार पूर्णसिंह जी के लेख को प्रकाशित कर रहे हैं, यह लेख अमेरिका के वाल्ट ह्विटमैन पर पूर्णसिंह जी द्वारा लिखा गया था। लेख आपको कैसा लगा, लिखकर भेज सकें तो हमें प्रसन्नता होगी।

अनन्य में और क्या ऐसा हो, जिसे आप पढ़ना चाहते हैं? यह भी हमें लिखकर सूचित कीजिए।

इस अंक के सभी रचनाकारों का, उनकी रचनाओं के लिए आभार, अनन्य की पूरी टीम का आभार और विशेष रूप से सभी पाठकों का आभार।

-डा० जगदीश व्योम
संपादक, अनन्य

वीरेंद्र आस्तिक

भारतीय वायु सेना और दूर संचार विभाग के तकनीक विभाग से सेवानिवृत्त वीरेन्द्र आस्तिक प्रसिद्ध नवगीतकार हैं। दो दर्जन से अधिक समवेत संकलनों में प्रकाशित नवगीत सहित छः नवगीत संग्रह, दो संपादित पुस्तकें और एक नवगीत की आलोचनात्मक कृति प्रकाशित है। कई गीत-नवगीत आल इंडिया रेडियो और दूर दर्शन द्वारा क्रय किए गए। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में कई पुस्तकें शामिल। उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, द्वारा सम्मानित।

ईमेल - astikavirendra@gmail.com

गीत/नवगीत

-वीरेंद्र आस्तिक

1.

सामने तुम हो

सामने तुम हो, तुम्हारा
मौन पढ़ना आ गया
आँधियों में एक खुश्बू को
ठहरना आ गया

देखिए तो इस प्रकृति को
सोलहो सिंगार है
और सुनिए तो सही
कैसा ललित उद्गार है
शब्द जो अव्यक्त था
अभिव्यक्त करना आ गया
सामने तुम...

धान-खेतों की महक है
दूर तक धरती हरी
और इस पर्यावरण में
तिर रही है मधुकरी
साथ को संकोच तज
संवाद करना आ गया
सामने तुम...

शांतिमय जीवन;
कठिन संघर्ष है,
पर खास है
मूल्य कलरव का बड़ा
जब हर तरफ संत्रास है
जिन्दगी की रिक्तता में
अर्थ भरना आ गया
सामने तुम...

2.
सूरज लील लिए

हिरना
इस जंगल में
कब पूरी उम्र जिए!

घास और पानी पर रहकर
सब तो, बाघों के मुँह से
निकल नहीं पाते
कस्तूरी पर वय चढ़ते ही
साये, आशीषों के
सर पर से उठ जाते
कस्तूरी के
माथे को
पढ़ते बहेलिए
हिरना इस जंगल में...

इनके भी जो
बूढ़े मुखिया होते
साथ बाघ के
छाया में पगुराते
कभी सींग पर बैठ
चिरैया गाती
या फिर
मरीचिकाओं पर मुस्काते
जंगल ने
कितने
तपते सूरज लील लिए
हिरना इस जंगल में...

3.
हम ज़मीन पर ही रहते हैं

हम ज़मीन पर ही रहते हैं
अम्बर पास चला आता है

अपने आसपास की सुविधा
अपना सोना,अपनी चाँदी
चाँद-सितारों जैसे बन्धन
और चाँदनी-सी आजादी
हम शबनम में भीगे होते
दिनकर पास चला आता है
हम ज़मीन पर...

हम न हिमालय की ऊँचाई
नहीं मील के हम पत्थर हैं
अपनी छाया के बाढ़े हम
जैसे भी हैं हम सुन्दर हैं
हम तो एक किनारे भर हैं
सागर पास चला आता है
हम ज़मीन पर...

अपनी बातचीत रामायण
अपने काम-धाम वृन्दावन
दो कौड़ी का लगा सभी कुछ
जब-जब रूठ गया अपनापन
हम तो खाली मंदिर भर हैं
ईश्वर पास चला आता है
हम ज़मीन पर...

-वीरेन्द्र आस्तिक

मुकरियाँ

'मुकरी' लोक समाज में प्रचलित, लोकप्रिय पहेलियों का ही एक रूप है। प्राचीन काल से ही मुकरी तथा इस प्रकार के अन्य कई लोकप्रिय काव्यरूपों का प्रचलन लोक समाज में होता रहा है। दो सुखने, ढकोसले, पहेलियाँ, बतौनियाँ आदि-आदि का प्रयोग लोक मानव मनोरंजन के साथ–साथ लोक में बुद्धिचातुरी की परीक्षा लेने के उद्देश्य से करता रहा है। इनमें मुकरी की लोकप्रियता कुछ अधिक ही रही है। मुकरी में दो सहेलियों के माध्यम से बातचीत कविता की शैली में की जाती है, इसमें जो बातें कही जाती हैं, वे दोअर्थी या श्लिष्ट होती हैं, लेकिन उन दोनों अर्थों में से जो प्रधान अर्थ होता है, उससे मुकरकर दूसरे अर्थ को उसी छन्द में स्वीकार किया जाता है, लेकिन यह स्वीकारोक्ति वास्तविक नहीं होती है। वास्तविक अर्थ से मुकर कर मिलता–जुलता दूसरा अर्थ बताने के कारण ही इसका नाम 'मुकरी' हुआ। यूँ तो लोक में इनका प्रचलन लम्बे समय से होता रहा है, किन्तु हिन्दी में अमीर खुसरो ने लोककाव्य–रूप 'मुकरी' को साहित्यिक रूप दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने विविध विषयों पर मुकरी लिखकर इस विधा को विस्तार प्रदान किया है। अलंकार की दृष्टि से इसे 'छेकापह्नुति' कह सकते हैं, क्योंकि इसमें प्रस्तुत अर्थ को अस्वीकार करके अप्रस्तुत को स्थापित किया जाता है।

श्रीमती सुधा राठौर, लोक साहित्य और लोक संगीत के साथ गहरा जुड़ाव रखती हैं। सुधा राठौर ने विविध विषयों को मुकरी में ढाला है, जिनमें मुकरी की आंतरिक लय और तुक का विशेष ध्यान रखा गया है। इन पाँच पंक्ति वाली लोकप्रिय काव्यविधा 'मुकरी' में पहली तीन पंक्तियों में 16-16 मात्रा तथा चौथी और पाँचवीं पंक्ति में 8-8 मात्राएँ रहती हैं, लय और तुक का विशेष महत्व रहता है।

–डॉ॰ जगदीश व्योम

सुधा राठौर

नागपुर में रह रहीं सुधा राठौर कविता, ग़ज़ल, मुक्तक, हाइकु, गीतिका, दोहा, चौपाई, कुंडलिया छंद, सोरठा, कहमुकरी, लघुकथा आदि काव्य-विधाओं में सृजन करते हुए लगातार सक्रिय हैं। कविता, दोहों और कहमुकरी विधा की 3 पुस्तकें प्रकाशित। अनेक साझा संग्रहों में हाइकु, लघुकथा, दोहे आदि रचनाएँ प्रकाशित। कई संस्थाओं से पुरस्कृत/ सम्मानित।

ईमेल- sudharathor66@gmail.com

कहमुकरियाँ

-सुधा राठौर

1.

मुझे जान से भी वो प्यारा
उस बिन मेरा नहीं गुज़ारा
मीत न कोई उसके जैसा
का सखि साजन ? ना सखि, पैसा

2.

लाज मुए को ज़रा न आए
बड़बोले सा वह बतियाए
सुनें, हँसें भुवन और अँगना
का सखि साजन ? ना सखि, कँगना

3.

हलुआ पूड़ी खीर नकारे
भूख सहे पर आस न हारे
माँगे हरी मिर्च का चुग्गा
हे सखि साजन ? ना सखि, सुग्गा

4.

साँझ ढले सौतन घर जाए
सगरी रैना वहीं बिताए
मुझे समय देवे गिन-गिनकर
का सखि साजन ? ना सखि, दिनकर

5.

मुआ शक़्ल से बुद्धू भोला
दूर रहे तो रहे अबोला
छुओ तो ऊँचे बोले बोल
का सखि साजन ? न री सखि, ढोल

6.

प्यास मुआ सारी ले भागे
रहे अर्घ्य - पूजन में आगे
तोंद बड़ी औ' थुलथुल मोटा
का सखि साजन ? ना सखि, लोटा

7.

वैसे रहता सिमटा चुप्पा
छू लें अधर फूलकर कुप्पा
माँगे मुआ साँस का चुग्गा
का सखि साजन ? ना सखि ,फुग्गा

8.

नहीं मुए ने पाई मूँछ
फिर भी रखता टेढ़ी पूँछ
मारे डँक पड़े जब पिच्छू
का सखि साजन ? ना सखि, बिच्छू

9.

दिनभर कलुआ संग में घूमा
लिपट पाँव को मेरे चूमा
शाम ढली तो मुझे छकाया
का सखि साजन ? ना सखि, साया

10.

रोज़ पड़ोसन से मिल आवै
पाँव तले उसके बिछ जावै
कबहूँ करे ना मुझसे प्यार
का सखि साजन ? न, हरसिंगार

- सुधा राठौर

Vandana Kumari , 'Acoustic Space (diptych) / 36"x56",
Charcoal and Rice-paper on paper, 2023

गीताश्री

मुज़फ्फ़रपुर, बिहार में जन्मी और गाज़ियाबाद (उत्तर प्रदेश) में रह रहीं पत्रकार एवं लेखक गीताश्री के अब तक सात कहानी संग्रह, चार उपन्यास सहित स्त्री विमर्श पर चार शोध पुस्तकें प्रकाशित हैं। कई चर्चित पुस्तकों का संपादन-संयोजन। पत्रकारिता का सर्वोच्च पुरस्कार रामनाथ गोयनका, बेस्ट हिंदी जर्नलिस्ट ऑफ द इयर समेत अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त।

ईमेल - geetashri31@gmail.com

सलमा सितारा जड़ी मेरी साड़ी

-गीताश्री

"मैं तभी मंदिर आती जब दीदी को कोई लड़के वाला देखने आता। मैंने अपने लिए यह मौका नहीं दिया। मैं मंदिर में रैंप वाक करने को बिल्कुल तैयार नहीं थी जिस तरह दीदी या शहर की दूसरी लड़कियाँ किया करती थीं। लड़की को चला कर, उठा कर, बैठा कर, हाथ, पैर सब साड़ी से बाहर निकलवा कर देखते थे लड़के वाले, मानो सोनपुर मेला में गाय-बैल खरीदने आए हों। .."

वह बार-बार मुझसे टकरा रही थी। मैं उससे बचने की कोशिश करती हुई भीड़भाड़ में इधर-उधर हो रही थी। जब-जब पास से टकराकर निकलती, उसकी साड़ी से कोई चमक फूटती और मेरी आँखें चौंधिया जातीं। दिल्ली में भी खूब कशीदाकारी वाली डिजाइनर साड़ियाँ पहने देखा है स्त्रियों को, वे चमकती भी हैं, लेकिन किसी को चमकाती नहीं हैं। इतना लहराकर भी नहीं निकलतीं कि आँखों में सितारे नाचने लगे। इतनी चमचम साड़ी मैंने पहली बार देखी है। सिर पर आँचल और मुँह से पल्लू दबाए, वह मेरे आसपास ही मँडराती रही। मैं असहज

महसूस करने लगी। दुबली पतली, मँझोले कद की एक देहाती किस्म की स्त्री को भला मुझमें क्या दिलचस्पी हो सकती है। मैं अपनी बड़ी बहन के घर आई हूँ, चंपारण के छोटे से कस्बे में जहाँ मुझे कोई नहीं पहचानता। दीदी के रिश्तेदार भी नहीं। बीस साल बाद यहाँ कदम धरा है मैंने। बीस साल बाद क्यों, इसकी कुछ कथा उपकथाएँ हैं, जिसके बारे में फिलहाल सोचना भी नहीं चाहती। मई के महीने

में मेरा माथा ऐसे ही सनक जाता है जब बिहार की यात्रा करनी पड़े। बहन की बेटी की शादी है तो जाना ही पड़ेगा। सबने मुझसे रिश्ते तोड़ लिए थे, एक दीदी थीं जो हमेशा छुप-छुपाकर मुझसे रिश्ता जोड़े रहीं। जैसे मैं उनके हर गुनाह में साथ थी, वैसे ही वे मेरे हर गुनाह को गर्व से भर कर देखा करती थीं। फिर भी मैं बीस साल तक उनकी देहरी पर नहीं आयी। हम अच्छे मौसम में मिला करते थे, अपने शहर में, कल्याणी वस्त्रालय में साड़ी खरीदते हुए या हरिसभा चौक पर लंवग लता खाते हुए। लंबी बैठक करनी हो तो हम देवी मंदिर की सीढ़ियों पर जाकर बैठ जाते। हम दोनों खूब हँसते कि किसी जमाने में इन्हीं सीढ़ियों पर बैठकर हमने कितने लड़के वालों को धता बताई थी। मैं तभी मंदिर आती जब दीदी को कोई लड़के वाला देखने आता। मैंने अपने लिए यह मौका नहीं दिया। मैं मंदिर में रैंप वाक करने को बिल्कुल तैयार नहीं थी जिस तरह दीदी या शहर की दूसरी लड़कियाँ किया करती थीं। लड़की को चला कर, उठा कर, बैठा कर, हाथ, पैर सब साड़ी से बाहर निकलवा कर देखते थे लड़के वाले, मानो सोनपुर मेला में गाय-बैल खरीदने आए हों। मुझे याद आया, भइया के लिए हम भी कई लड़कियाँ देखने इसी तरह गए थे, अब तो किसी की याद भी नहीं। सारी स्मृतियाँ धुँधली हो चुकी हैं। एक याद है और उसकी वजह भी है। कई लड़कियाँ छाँटने के बाद एक लड़की और देखने हम गए। सहमी सकुचाई लड़की साड़ी लादे, पहने नहीं, पहनने का सलीका गायब था। साफ लग रहा था कि उसे जबरन लपेट दिया गया है शामियाने में और वह भीतर से काफी रुष्ट हो रही है। चाची ने कहा- "जरा चलवा कर दिखाइए...और जरा पैर भी देंखेंगे..."

लड़की की मामी गिड़गिड़ाई- "फोटो तो भेजबे न किए थे। देखीं नहीं क्या आप... उसमें तो साफ-साफ पैर नजर आ रहा है... चलवा-फिरवा कर देखा देते हैं। कौनौ ऐब नहीं हैं हमारी गुड्डी में..."

"ऐ बउआ...जाओ...देवी माँ का एक चक्कर लगा कर आओ तो..."

मामी घूमकर लड़की को बोलीं। लड़की सीढ़ी पर बैठी थी, हड़बड़ा कर उठी और खड़ी होना चाह ही रही थी कि साड़ी में पैर फँसा और लड़खड़ा गयी। बैठे-बैठे पैर भी झुनझुना गया होगा। वह लड़खड़ाती हुई कुछ कदम चली, सबकी निगाहें लड़की पर, मामी के माथे पर चिंता की लकीरे, मेरी चाची के भाव ऐसे कि देखा...पकड़ लिया न...लड़की के पैर में खोट है, पकड़ लिया... लड़की मंदिर का पाया पकड़कर खड़ी हो गयी। सब लोग हक्के-बक्के। शाम का समय था, मंदिर में भक्तों की भीड़ आने लगी थी। थोड़ी देर की शांति के बाद सब विदा हुए, सबके मन में अलग-अलग किस्म के भाव रहे होंगे। मैं चुपचाप यह सब देख कर मन ही मन

कुछ ठान रही थी।

इस घटना के कुछ दिन बाद मैं अपने कॉलेज के कॉमन रूम में बैठी थी कि एक लड़की उछलती कूदती आयी और पूरा रूम शोर से भर गया। वह खिलखिला कर हँस रही थी किसी बात पर। मैं मोटे गेस पेपर में छिपा कर गुलशन नंदा का उपन्यास पढ़ रही थी। घर

में मौका मिलता नहीं था, क्लास में नहीं पढ़ सकते थे। कॉमन रुम में एकांत मिल जाता था, यहीं छुप कर पढ़ लिया करती थी। दूसरे भले समझते हों कि मैं पढ़ाकू छात्रा हूँ, मैं तो बाल्यावस्था से प्रेम के पाठ पर ज्यादा ध्यान दे रही थी। क्या पता था कि जिंदगी के सिलेबस में यह भी शामिल होगा और इम्तहान देने पड़ेंगे। यही पढ़ाई काम आएगी, पता नहीं था। बस अपने कल्पित नायक-नायिका को खोज रही थी उसमें। रुम की शांति भंग हुई तो मैंने किताब बंद करके गौर से उसका चेहरा देखा- अरे... ये तो वही लड़की है। कुछ दिन पहले भइया के रिश्ते के लिए जिसे हम देखने देवी मंदिर गये थे और जो ठीक से चल भी नहीं पा रही थी। लड़की ने मुझे नहीं देखा था। मैंने पूरा मुआयना किया उस लड़की का। अच्छी खासी चंगी लड़की, उछल रही है, मस्त है, फिर क्यों इसने ऐसा किया कि शादी की बात टूट जाए। एकबारगी मन हुआ कि सीधे उससे ही झँझोड़ कर पूछ लूँ। फिर लगा कहीं बखेड़ा न खड़ा हो जाए। मैं एक क्लास छोड़ कर घर भागी। अपनी खास दोस्त वीणा ढींगड़ा को बोल दिया कि वह मेरे बदले क्लास में प्रॉक्सी कर दे और मैंने बाहर से रिक्शा किया, सीधा घर। मेरी जैसी कंजूस लड़की जो रिक्शा के पैसे बचाकर फिल्में देखा करती थी, वह भूल गयी सिनेमा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता और जल्दी से जल्दी घर पहुँचकर सब बता देना चाहती थी। मेरे घर पहुँचते ही पूरा माहौल बदल गया। चाची को सबने खूब सुनाया और तुरत अगुआ-बरतुहार को बुलाया गया और वह लड़की उसी साल लगन शुरु होते ही मेरी भाभी बन कर घर आ गयी। लड़की को पता लग गया था कि कभी कभी कॉमन रुम में हल्ला गुल्ला भारी पड़ जाता है।

आज तक भाभी मुझे उलाहने देती रहती हैं। सोच कर फिर हँसी आयी। शादी में वे भी पहुँचने वाली होंगी। एक बार फिर वे उन दिनों को याद करेंगी और हँस-हँसकर मुझे कोसेंगी। मैं चिपचिपी गरमी में दो दिन पहले ही आ गयी। मेरे लिए गरमी सहन करना मुश्किल हो रहा था। दो तीन बार दीदी को बोला भी कि मुझे यहाँ कोई एसी होटल में कमरा दिलवा दो, मगर वे माने तब ना। दीदी के अनुसार मोतीपुर जैसे कस्बे में ए सी होटल की कल्पना करना मूर्खता है। बड़े- बड़े पंखें मँगवा दिए गए थे जिनकी हवा से हर समय बाल खराब या साड़ियाँ उधियाती रहतीं। मैं पंखे के सामने चेहरा ले जाती थोड़ी देर राहत पाकर फिर मंडप के पास आकर हथ-पंखा झलने लगती। मेरे लिए यह शादी उत्सव नहीं, सजा थी मानो। मैं मंडप के किनारे बैठी सोच रही थी कोई हथ-पंखा खाली करे तो चेहरे पर हवा दूँ। कई औरतों के हाथों में पंखे थे। पुरुषों की आवाजाही थी, वे दौड़ भाग में व्यस्त थे, इसीलिए उनके कंधे पर लाल रंग का गमछा लटक रहा था, जो कई काम करता था। पंखे की तरह हवा भी कर लो और पसीना भी पोंछते रहो। मैं कुछेक स्त्रियों के हाथों में पंखा देखकर उन्हें हथियाने के बारे में सोचने लगी। कोई पंखा नीचे धरे तो उठा लाऊँ। कि तभी अचानक...

"हम हाँक दें पंखा ...?"

वह रंग-बिरंगा पंखा हाथ में लिए खड़ी

थी। धागे से बना हुआ रंग- बिरंगा हथ-पंखा।

"ये मेरा अपना पंखा है... इससे हम हवा को उधर-उधर कर देते हैं, हम रोज साथ लेकर ईहाँ आते हैं... पंखा का यहाँ कौनो कमी नहीं है, लेकिन समय पर खोजिएगा तो एक्को ठो नहीं मिलेगा, सब एन्ने ओन्ने ढिंगरायल चलता है।"

वह पंखे से मेरे चेहरे पर हवा करने लगी। वही स्त्री थी जो पिछले दो दिन से रोज शाम को गाना गाने आती थी, सबके माथे पर गमकउआ तेल लगाती और सिंदूर टिकती। हथेली पर ड्राई फ्रूट के कुछ दाने रखती। मैं ये सब नजारा दूर से देखती, कभी उस जमात में शामिल नहीं हो पायी। लेकिन यह स्त्री छोड़े तब ना। तीसरे दिन की बात है। रोज सलमा सितारा वाली साड़ी पहन कर दमकती हुई आ जाती थी। उस दिन तो कुछ ज्यादा ही करीब आ गयी थी और मैं उसका चेहरा साफ-साफ देख पा रही थी। चेहरे पर झाईंयाँ पड़ गयीं थीं और आँखों के नीचे स्याह घेरे। बड़ी-बड़ी आँखें सिकुड़ गयीं थीं और रंगत उतरी हुई थी। बड़ी-सी चमचमाती बिंदी जरूर माथे पर दमक रही थी। बाल घने मालूम पड़ते थे। बीच से नहर की तरह निकाली गयी माँग में आधी दूर तक लाल टूह-टूह सिंदूर भरा हुआ था। कुल मिलाकर वह ग्रामीण औरत का परफेक्ट पैकेज मालूम पड़ रही थी। मैं सोच में पड़ गयी कि यह औरत भीड़भाड़ में सबको छोड़ कर मेरे ही पीछे क्यों पड़ गयी है। ज्यादा शालीन भाषा में कहूँ तो मुझमें इसकी इतनी दिलचस्पी क्यों, मैं समझ नहीं पा रही थी। मुझे हमेशा इतनी भरी-भरी औरतों से अरुचि रही है। इनका इतना लदा-फदा रहना मेरी नजर में गँवारपन था। पिछड़ेपन की निशानी। मुझे चिढ़ होती है।

वह हथ-पंखा डुलाए जा रही थी। कब उसने मेरा हाथ पकड़ लिया, मुझे पता ही नहीं चला। भयानक गर्मी में उसकी चिपचिपी उँगलियाँ मेरे हाथों में धँसकर मुझे तकलीफ दे रही थी।

"आप मुझे पहचानती हैं क्या, मैं नहीं पहचानती आपको, कुछ कहना चाहती हैं..?."

मैंने सीधे दनादन सवाल दाग दिए। कब तक लुकाछिपी का खेल चलता रहेगा। मैं अपरिचय को परिचय में बदल कर सहज हो जाना चाहती थी।

"हम जानते हैं आपको, आप भले नहीं जानती हैं हमको...जानेंगी कैसे, हम गाँव के ठहरे, आप दिल्ली वाली...हमको सब पता है आपके बारे में..अभी याद दिलाते हैं आपको... याद पारिए...कुछ याद आएगा..."

मैंने कुछ भी याद करने से इनकार कर दिया।

"कइसे याद परेगा, हम याद दिला ही देते हैं...हम आपकी बहन के पड़ोसन हैं, और हमको इस जीवन में आपसे बिना मिले मरना नहीं था। हम हमेसा चाहे कि आपसे मिले... लेकिन हम गाँव और कस्बा के बीच फँसे रहे। कइसे आते दिल्ली। आपके आने का पता चला तो हम खुस हो गए, हमारी मुराद पूरी हो गयी। सादी बियाह के भीड़भाड़ में आपसे बात करने का मौका ही नहीं मिल रहा था, इसीलिए आपके पीछे-पीछे लगे थे..."

"लेकिन काहे...काहे पीछे लगे थे..."

मैं हँसी।

वह मेरे बगल में मोढ़ा खींच कर बैठ गयी। हौले हौले पंखा झलती रही।

"गौर से देखिए...कुछ याद परेगा..."

मैंने देखा... उसके चेहरे पर गुजरे वक्त के गहरे निशान थे। गर्दन पर हल्की झुर्रियाँ आने लगी थीं। आँखों के नीचे स्याह चाँद था। मैं स्मृतियों पर बहुत जोर देकर भी नहीं पहचान पा रही थी....कौन थी..?

मुझे होस्टल और कॉलेज की कई पोपुलर चेहरे याद थे। उनमें से कई आज भी टच में हैं, कुछ को फेसबुक ने खोज दिया तो कुछ ने व्हाटसप पर ओल्ड फ्रेंडस का ग्रुप बना लिया है। कुछ की खोज जारी है...ये चेहरा तो इस दौर में कहीं नहीं था...मामूली चेहरों को मैं भूल चुकी थी। जिंदगी में चेहरो का कोलाज इतना घना था और इतनी तेजी से रील घूमती है कि स्मृतियाँ कँपकँपा जाती हैं। दिमाग में उनकी फाइल सेव ही नहीं हो पाती। वैसे भी चेहरे और आवाजें पहचानने में मैं शर्मिंदगी की हद तक बहुत कमजोर हूँ। मैंने उस स्त्री के सामने अपने हाथ खड़े कर दिए। उसने मानो कुछ खुलासा करने के लिए मुँह खोला ही था कि पीछे से किसी स्त्री की आवाज आयी- "हे झुन्नी के माई...पाँच ठो झूमर गा दीजिए...फिर विधि सुरु करेंगे।"

वह पंखा वहीं छोड़ कर उठी और मड़वा के दूसरी तरफ जहाँ माइक रखा था, वहीं जम कर बैठ गयी। गाने की बात सुनते ही उसके शरीर में बिजली की तड़प दिखायी दी। मुझसे मिलने, कुछ कहने की तड़प फीकी पड़ गयी थी। उसके पीछे धीरे-धीरे गाने वाली औरतें जुटने लगीं थीं। कहीं से हँसती हुई मर्दाना आवाज आयी-

"सादी बियाह के घर में एतना सन्नाटा नहीं न अच्छा लगता है, औरत लोग गाते रहिए, और करना क्या है...लगन में औरत सब पगलायी रहती है, पगलाइए...फेर कहाँ मौका मिलेगा आपलोगो को, धूमगज्जर मचाइए.."

वह औरत शुरू हो चुकी थी। हाथ में कार्डलेस माइक लेकर गा रही थी और उसकी आवाज बाहर तक जा रही थी। पूरे मोहल्ले को पता लग जाता है कि ये लगन वाला घर है। लगन वाला घर हमेशा सुरीला

रहता है। लजीज व्यंजनों से महकता और अश्लील हँसी-मजाक से गूँजता हुआ। वह गा रही थी-

"सलमा सितारा जड़ी...जड़ी मेरी साड़ी...सलमा सितारा जड़ी...

पीछे बैठी औरतें कोरस में गा रही थीं।

सड़िया पहिनी हम बगिया में गइली...

माली के मन में बसी...

बसी मेरी साड़ी...

सलमा सितारा जड़ी..."

पीछे बैठी औरतों ने लय में तालियाँ बजानी शुरू कर दी।

सड़िया पहिनी हम नगरी में गइली...

दारोगा के मन में बसी...

पीछे से एक औरत "दारोगा" जोर से बोली और गाते-गाते फिस्स से हँस पड़ी। मैने देखा- सलमा सितारा वाली औरत के चेहरे का रंग उड़ गया था। गाते-गाते सुर थोड़ा लड़खड़ाया। लोकगीत में थोड़ा अनगढ़ गायिकाएँ सुर के साथ छेड़छाड़ करती रहती हैं। फिर सलमा सितारा

वाली ने माइक सँभाला और गाना खत्म होने के बाद एक पैरा और गाया...

"सड़िया पहिनी हम कोठरी में गइली....

पिया जी के मन में बसी...बसी मेरी सोड़ी...सलमा सितारा..."

पीछे बैठी औरतों में चुहल शुरू हो चुकी थी। पीछे से किसी औरत ने कहा- "पूरा जमाना से होके कोठरी में गईली...पहिले ही काहे न गइली..."

जोरदार ठहाका लगा। उस औरत ने माइक दूसरी औरत को पकड़ा दिया और स्थिर चित्त बैठी रही थोड़ी देर। दूसरी औरत ने दूसरा झूमर गाना शुरू किया। धीरे से सलमा सितारा वाली खिसक गयी वहाँ से। औरतें झूम झूम के गाती रहीं। मेरी नजर सलमा सितारा पर ही लगी थी। थोड़ी देर में वह पानी का बोतल लिए हुए आयी और मेरे पास बैठ गयी। थोड़ी हताश जान पड़ रही थी मानों उस गीत ने सारा तेज छीन लिया हो।

मैं गरमी से तरबतर बैठी थी और शिफॉन साड़ी भी मुझ पर भारी पड़ रही थी। मन कर रहा था कि खुद को कैसे पाँच मीटर के शामियाने से अलग करूँ। कैसे ये औरतें इस मौसम में भी भारी भारी साड़ियाँ पहनकर झूमती रहती हैं। कितना उत्सव है इनके जीने में। मैंने खुद को गरमी के साथ तालमेल बिठाने लायक बनाना शुरू किया। सलमा सितारा का मुँह फूटा-

"मैं पूजा कुमारी हूँ...पूजा...याद है... आपसे जूनियर थी, एक क्लास। आप हमको अपने भैया के लिए देखने आयी थीं देवी मंदिर

"उस दिन तो कुछ ज्यादा ही करीब आ गयी थी और मैं उसका चेहरा साफ-साफ देख पा रही थी। चेहरे पर झाईंयाँ पड़ गयीं थीं और आँखों के नीचे स्याह घेरे। बड़ी-बड़ी आँखें सिकुड़ गयीं थीं और रंगत उतरी हुई थी। बड़ी-सी चमचमाती बिंदी जरूर माथे पर दमक रही थी। बाल घने मालूम पड़ते थे। बीच से नहर की तरह निकाली गयी माँग में आधी दूर तक लाल टूह-टूह सिंदूर भरा हुआ था। कुल मिलाकर वह ग्रामीण औरत का परफेक्ट पैकेज मालूम पड़ रही थी। "

में। दशहरा के भीड़भाड़ में...याद आया..."

"आप हमको केतना दौड़ाई थीं... चल के दिखाओ...गा के सुनाओ...हाथ ऊपर उठाओ...और आपकी चाची तो मेरी साड़ी उठाकर पैर चेक की थी..."

"क्या...? " मैं चौंक गई. ऐसा कांड सिर्फ एक लड़की के साथ थोड़े न हमने किया था। गिनती याद नहीं। यह तो निरंतर हो रहा था। जाने कितनी लड़कियाँ देख के छाँटी थी हमने। किसी न किसी कारण से छँट जाती थी। दिल्ली में नौकरी करने वाले भैया के लिए गोरी, छरहरी और थोड़ी बहुत इंगलिश जानने वाली लड़की की तलाश थी हमें। साँवली लड़की तो हम लोग पहले ही मना कर देते थे। यह तो

सांवली थी। हमने कैसे इसको देखा होगा। मुझे याद नहीं आ रहा था।

"आप हैरान हो रही हैं..." वह हो हो करके हँस पड़ी।

"आप लोग तो हमसे बातें ही नहीं की... खाली बकरी की तरह देह को खँगारती रहीं। हमसे बात तो करतीं..."

"हमको बहुत मन था किसी दिल्ली वाले लड़के से बियाह करने का...काहे की हम मैथ में टॉप किए थे, यूनिवर्सीटी टॉप। आप लोग जब देखने आयी थीं तब हम बी ए का एक्जाम ही दिए थे...रिजल्ट नहीं आया था। हमको आगे की पढ़ाई दिल्ली जाकर करने का मन था...सोचे थे, आपके भैया से बियाह होता तो दिल्ली में पढ़ते आगे, कुछ बनते...सपना ही टूट गया...गाँव में चौका-भंसा करते हैं, गोबर लीपते हैं, बच्चों के साथ सारा समय चला जाता है। यही जीवन मिला हमें..." मैं हैरान होकर उसका मुँह देखे जा रही थी। पूजा कुमारी... वो साँवली- सी लड़की...मरियल सी, फोटो में सुंदर दिखी थी। अब तक जितनी लड़कियों के फोटो आये थे उनमें सब स्टुडियों फोटो थे, फूलों के ऊँचे स्टैंड पर एकतरफ हाथ रखे, दो चोटी किए और मासूम-सा चेहरा। एक लड़की का फोटो था जो स्टुडियो का नहीं था, किताब हाथ में लेकर बाग में खड़ी थी। हमलोग हँसे थे फोटो देखकर– "देखो कितनी बनती है, जताना चाह रही कि हम बड़े पढ़ाकू हैं। शादी के लिए कहीं ऐसी तस्वीर देखी है...?" चाची बोली थीं- "बड़ी एडभांस लगती है लड़की...हमारे विजय को पढ़ाएगी..."

मजे मजे में लड़की को देखने के लिए बुलावा भेज दिया गया और वहीं हुआ जो हमने पहले से तय कर रखा था। साँवली लड़की तो बिल्कुल ना चलने की... एकबार माँ का मन डोला था...धीरे से फुसफुसाई थीं –

"लड़की , विजय से मैच कर रही है। सोने का चेन पहना देते हैं...फाइनल कर देते हैं...कितनी बार लड़की देखो, छाँटो...हमसे न होगा अब..."

साँवली लड़की मिचिर-मिचिर आँखें खोलकर हम सबको देख रही थी। जबकि लड़कियाँ आँखें ही नहीं उठाती थीं, शर्म के मारे। चाची कोशिश करती कि आँखों की पुतलियाँ जरूर देखें...कहीं कुईस (नीली) तो नहीं।

लड़कियाँ जो लाज के मारे गड़ती सो ठुड्ढी पकड़ के उठाने से भी न आँख खोलतीं। लड़की की माँ या भाभी कान में फुसफुसाती तब कहीं लड़की हौले से पलकें उठाती और डरी सहमी हिरणी की-सी आँखें झपक जातीं। मगर ये साँवरी लड़की तो आँखें खोलकर साहसपूर्वक सबको देख रही थी। मैंने उन आँखों को याद करने की कोशिश की। वे उत्सुक थीं, कुछ हद तक प्रार्थी भी। मुझे अतीत से निकालती हुई आवाज फिर आयी-

"आपको कहाँ याद होगें हम, इतनी लड़की देखी होंगी कि सब गड्डु-मड्डु। चलिए नीचे चलते हैं, पीछे बँसवाड़ी में ठंडी हवा चल रही है। वहीं बैठते हैं। वहाँ हल्ला गुल्ला भी नही होगा। आपसे बहुत बतियाना है हमको...पता नहीं, फिर मौका मिले न मिले..."

"मैं फिर जाड़े के मौसम में...गर्मी में

कभी नहीं..."

"आप आ सकती हैं...आपकी बहन का घर है, मेरा पता नहीं...कहाँ और कहाँ भाग जाऊँ..."

"भाग जाऊँ..." बोलते हुए उसने एक आँख दबाई मानो भाग जाने को लेकर कोई रहस्य हो। उसके साथ चलती हुई मैं उसके चेहरे को गौर से देख रही थी... मुझसे जूनियर लड़की, जो अब अधेड़ स्त्री में बदल चुकी है, जिसके चेहरे पर वक्त के निशां मौजूद है, जिसे वक्त ने असमय बूढ़ा बना दिया है... जो अब भी भागने की बात करती है। युवावस्था में जरूर आकर्षक रही होगी। मुझसे छोटी होते हुए भी कितनी उम्रदराज लग रही है। मैं खुद को नहीं देख सकती थी सामने से लेकिन सामने जो स्त्री थी, वो मुझे बूढ़ी लग रही थी। मैंने अपने चेहरे को टटोला। शादी में आने से पहले ब्यूटी पार्लर में पूरा दिन यों ही नहीं गुजारा था। मैं अपने दमकते और कसे हुए चेहरे, बदन को देख सकती थी, उसकी आँखों में। एकबारगी हँसी आयी- कोई यकीन नहीं करेगा कि हम दोनों साथ पढ़ते थे या यह स्त्री मुझसे एक क्लास जूनियर थी। मन ही मन सोचा, किसी से बताने की क्या जरुरत। कौन पूछ रहा है मुझसे...।

"मैं दो बार भागी हूँ..."

"हायं..."

"और क्या...?"

बँसवाड़ी में बैठने के लिए दो मोढ़ा रखा था। बाँसों के हरे-भरे झुरमुट में सचमुच मुझे अच्छा लगा। गोवा का वह रेस्तराँ याद आ गया। कैलंगुट बीच के पास एक गाँव में बाँसों के झुरमुट के बीच बना वह रेस्तराँ बाहर से छुपा-छुपा सा लगता है, अंदर रुमानी दुनिया है। फेनी और भुने हुए काजुओं की शोख गंध है और प्रेमी जोड़ों की फुसफुसाहटें।

"हमारे लिए यही कुंजवन है...घर के शोर से घबरा कर ऐसी ही जगहों पर जा बैठती हूँ घंटों..."

मुझे लगा, वह मन पढ़ सकती है।

"क्या हुआ फिर तुम्हारे साथ ? पूरा बताओ मुझे..."

भीड़ से अलग, अपनी जूनियर के मुँह से उसकी व्यथा कथा सुनना चाहती थी। उसकी कथा मुझे गिल्ट में डाल रही थी लेकिन मैं क्या करती। तब मैं खुद छोटी थी और कुछ भी मेरे बस में नहीं था। हम दोनों का परिवेश एक था। अंतर बस इतना कि मैं विद्रोह कर सकी, वह फँसी रह गयी।

"तुमने अपने घरवालों से विद्रोह क्यों नहीं किया...क्यों चुपचाप उनकी बात मानती रही...तुम इतनी तेज स्टुडेंट थी, कहीं भी नौकरी कर सकती थी, क्या मजबूरी थी...समझौते क्यों किये...?"

"शादी मेरे लिए पहला विद्रोह था। मैं जानती थी कि शादी के बाद सारे पहरे हट जाएंगे और एक पहरा बचेगा। उस पहरे से पार पा सकती थी, मायके के सारे पहरों से पार मेरे लिए असंभव था। शादी मेरे लिए मुक्ति का पहला मार्ग थी। देखती नहीं क्या...शादीशुदा लड़कियाँ कितनी आजाद हैं...शादी का ठप्पा लगा नहीं कि मायके का रोक टोक खत्म..."

"इससे अच्छा तो तुम घर से भाग जाती..."

"हम भागे थे, दो बार...अब एक बार और आखिरी बार..."

"बच्चों को छोड़ कर...इस उम्र में...

किसके साथ, कहाँ...? " मुझे हँसी छूट गयी। क्या औरत है भाई...इस उम्र में भी भागने का हौसला और इरादा रखती है। क्या दर्द है कि उसे टिकने नहीं दे रहा, भगाये जा रहा है। पहली बार किसी ऐसी दर्दकुमारी से मिली थी। मैंने पूजा कुमारी उर्फ दर्दकुमारी से पूछ ही लिया। फिर जिंदगी की परतें खुलती गईं....बाँस की गाँठों पर सुनहरी रंग की परतें हवा से छिल कर झर रही हों जैसे। मैं बेचैनी से बाँस की पतली डालियाँ अपनी ओर खींचती रही। एकाध बार मुँह में डाल कर चबा

डाला। कच्चे बाँस का स्वाद मुझे कहीं दूर लिये जा रहा था।

तनि ताकअ न बलमुआ हमार ओरिया

पूरे शहर में शोर था- "अघोरिया चौक की एक साधारण परिवार की लड़की को बड़े खानदान वालों ने पसंद कर लिया। अति साधारण लड़की उनकी बहू बनने जा रही है। लड़की के दिन फिर गए। वह पति के साथ अमेरिका सेटल हो जाएगी।" पूजा के दिमाग में हथौड़े की तरह चोट लगी। एक वो है, जिसे चार लड़के वाले अब तक किसी न किसी कारण से छाँट चुके हैं। इसी देवी मंदिर में हर बार उसके साथ खेल खेला गया। उसी देवी मंदिर में अघोरिया चौक वाली लड़की का कल्याण हो गया। पूजा ने उस लड़की को देखा था- मैट्रिक पास, गोरी, जब उसकी किस्मत पलटी, वह लड़की आँखें बंद किये स्तुति कर रही थी। मधुर कंठ से धीरे-धीरे गाती हुई उस लड़की को दो जोड़ी अधेड़ आँखें देख रही थी। शहर के सबसे बड़े रईस, बच्चा बस सर्विस के मालिक, अपने इकलौते बेटे के लिए योग्य लड़की ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो चुके थे। अब तक जितने रिश्ते आये, उन्हें लगता था, सब उनकी दौलत के लालची हैं। बेटा सीधा-सादा था। वे डरते थे। किसी रिश्ते पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे। थक-हार कर वे भी रोज मंदिर आते, हाथ जोड़ते और योग्य बहू माँगते। एक दिन देवी माँ ने उनकी सुन ली। पास में ही वह लड़की खड़ी थी। रईस बाबू बच्चा सिंह और उनकी पत्नी की नजर उस पर गयी। लड़की की आँखें मिलीं, उसने आदर से आँखें नीचे झुकायी, अपरिचय में ही प्रणाम करके गेट से बाहर निकल गयी। दोनों अधेड़ दंपत्ति ने देवी मंदिर में दो बार सिर नवाया और उस लड़की को मन ही मन बहू के रूप में स्वीकार लिया। मंदिर में शाम की घंटियाँ बजने लगीं। बच्चा बाबू ने इसे शुभ संकेत माना और उन्हें बिना लगन शहनाई सुनायी देने लगी। कुछ ही दिनों बाद पूरे शहर ने सुना कि अघोरिया चौक की एक गरीब लड़की को बच्चा बाबू ब्याह कर घर ले गए, लड़की का भाग्य पलट गया। उसका खानदार तर गया। फिर क्या था... शहर की कुछ लड़कियाँ रोज, शाम देवी मंदिर में स्तुति गाने अपने मन से जाने लगीं तो कुछ परिवार के दबाव में। मंदिर में लड़कियों का आना जाना ज्यादा हो गया। नतीजा मंदिर के गेट पर लड़कों की साइकिलें ज्यादा पार्क होने लगीं। पूजा उन लड़कियों में शामिल थी, जो अपनी मर्जी से रोज शाम देवी मंदिर जाने लगी। देवी स्तुति पढ़ते हुए वह एक आँख खोलकर चेक जरुर करती कि उसके आसपास कोई अधेड़ जोड़ा हो या कोई स्त्री या पुरुष। उन्हें प्रभावित करने का कोई

मौका वह नहीं छोड़ती। शहर में कई रईस थे और कुछ कुँवारे भी होंगे। क्या पता, किस्मत पर लगा ताला खुल जाए। किसी-किसी की किस्मत के ताले जंग लगे होते हैं, चाबी से नहीं खुलते। उन्हें तोड़ना पड़ता है या फिर उन्हें झाड़-झंखाड़ के हवाले कर देना पड़ता है। वक्त की बेलें उस पर चढ़ जाया करती हैं। पूजा इसके लिए तैयार न थी कि भाग्य को किसी के सहारे छोड़ा जाए। वह चाहती थी कि उसी लड़की की तरह उसकी किस्मत का ताला खुल जाए, नहीं तो एक दिन खुद ही तोड़ देगी ताले को। कुछ ताले कभी नहीं टूटते। मंदिर की दीवार से सिर टकरा-टकराकर पूजा कुमारी घायल हो गयी। किसी अधेड़ दंपति का दिल उस पर न पसीजा। किसी की नजर उस पर न पड़ी। मां बाप समझे, बेटी धार्मिक हो गयीहै, लगे हाथ बृहस्पति का व्रत भी करवा ही लिया जाए, सुंदर पति मिलने की पक्का गारंटी जो होती है। पीला खाओ, पीला पहनो, केला का पेड़ पूजो। इस काम के लिए भी उसने देवी मंदिर का कोना चुन लिया था। किस्मत का लेखा कुछ और था। एक दिन मंदिर से हताश उदास पूजा कुमारी घर पहुँची तो लगन की खबर मिल गई। पातोपुर के सबसे धनाढ़य किसान परिवार से रिश्ता आया था। व्रत सफल। पूजा कुमारी ने लड़के के बारे में विस्तार से जानना चाहा तो जो पता चला, उसे सुन कर गश खा गयी। लड़का मैट्रिक फेल, खेतीबाड़ी में निपुण। कई लीची बागान का मालिक। लड़के ने शर्त्त रखी है – लड़की आगे न पढ़ाई करेगी न नौकरी। पूजा के घरवालों ने झट से हामी भर दी। अब पूजा कुमारी की क्या चलेगी! शादी हो रही थी, यही क्या कम था। गणित की बी० ए० टॉपर लड़की ब्याह कर चली गई फसलों का गणित समझने। मगर चित्त चंचल। कहाँ हार माने। विकल्प की तलाश हमेशा रही। किसी तरह पिंजरे से निकलना था, नौकरी करनी थी। बैंक में पी० ओ० की तैयारी करनी थी। घर-गृहस्थी में सारा तेज भस्म हो गया था। पूजा कुमारी मशीन की तरह सब काम करती; लेकिन उनकी आँखें दिगंत में खोयी रहतीं। दो बच्चों की माँ बनने से पहले एक कोशिश हुई जो विफल रही। पातोपुर थाने का दारोगा अक्सर घर आता जाता था। मोटर साइकिल पर जब वह धूल उड़ाता आता तो पूजा कुमारी का दिल पुर्जा-पुर्जा हो जाता। उससे बात करने की फिराक में रहती। दारोगा जी को अकेला पाकर पर्ची फेंकी। दारोगा जी ने उठाया, आसपास देखा, चौखट पर झाँकती दो आँखें दिखीं, वो निहाल हुए। "तनि ताकअ न बलमुआ हमार ओरिया..." पढ़ के उन पर क्या बीती, ज्यादा नहीं पता। मगर पूजा कुमारी ने वहाँ से भाग निकलने का प्लान बना लिया। एक दिन हल्के अँधेरे में निकल पड़ी, गाँव के आखिरी छोर पर खड़ी-खड़ी इंतजार की मूरत बन गयी। रात गहराती जा रही थी, आसपास के भुतहा पेड़ जोर जोर से हिलने लगे तो भागी जान बचा के। पिछवाड़े से घर में घुसी तो दालान पर कुछ लोगों की बातें सुनायी देने लगीं।

"उस दारोगा साले का यहाँ आना-जाना बंद करो....क्या पता, हमारी औरतों को भगा ले जाए...साले ने आज बिंदेसर बाबू की बहू भगा ली...कल किसकी भगा ले जाए...वो तो मरेगा...नौकरी भी जाएगी...बिंदेसर बाबू छोड़ेंगे

नहीं, भूमिहार खानदान की इज्जत पर हाथ डालेगा ससुरा...गर्दन रेत देंगे उसका.."

पूजा कुमारी को जिंदगी में फिर एक बार गहरा धक्का लगा। भागने का प्लान कुछ साल के लिए मुल्तवी। अब जरा घर, पति और बच्चों के आगमन पर ध्यान देने लगी थी। जिंदगी के गणित का अभ्यास छूटा नहीं था। एम० ए० में दाखिला ले लिया था, पति को पटा कर। कॉलेज कम ही आती-जाती, परीक्षा की तैयारी घर पर करती थी। परीक्षा नजदीक आयी तो नोट्स की जरुरत पड़ी। पतिदेव से गिड़गिड़ायी कि किसी गणित के प्रोफेसर से थोड़ा बहुत पढ़वा दें। उन्हे जिला टॉप करने से कोई नहीं रोक सकता। पतिदेव का दिल जल्दी पसीज जाता था। सोचते थे –

"हम गणित में फेल हुए तो क्या, बच्चा लोगन का गणित तो ठीक रहेगा...ट्यूशन भी नहीं पढ़वाना पड़ेगा। घरे

में पढ़ लेगा।"

पहली बार उनको बीवी के गणित ज्ञान पर अभिमान हुआ। एम०ए०पास गणित टीचर का इंतजाम हुआ। घरवालों की मौजूदगी में पढ़ाई शुरु हुई। सिर पर आँचल रखे अपनी स्टुडेंट को देख कर टीचर हँसता मन ही मन। पैसा ज्यादा मिल रहा था, खाना-पीना भी मिल जाता है। स्टुडेंट भी इतनी तेज कि टीचर का दिमाग घूम गया। इसे आखिर पढ़ाए तो क्या। वह समझने की कोशिश कर रहा था, पूजा कुमारी उसे कुछ और समझा रही थी। दोनों कुछ दिन तक तो नहीं समझ पाए। चार छह महीने में दोनों समझ गए। एक दिन टीचर जी आये

"गणित की बी० ए० टॉपर लड़की ब्याह कर चली गई फसलों का गणित समझने। मगर चित्त चंचल। कहाँ हार माने। विकल्प की तलाश हमेशा रही। किसी तरह पिंजरे से निकलना था, नौकरी करनी थी। बैंक में पी० ओ० की तैयारी करनी थी। घर-गृहस्थी में सारा तेज भस्म हो गया था। पूजा कुमारी मशीन की तरह सब काम करती; लेकिन उनकी आँखें दिगंत में खोयी रहतीं। "

गाड़ी से पढ़ाने। रोज तो मोटर साईकिल से आते थे। एक दिन परदा लगा सफेद एंबेसेडर लेकर आ गये। सब कुछ पहले से तय था। सब अपने काम में लगे थे और पूजा कुमारी पर्स उठा कर, कुछ गहने, रुपये रखे और घर से निकल गयी। कार उन्हें लेकर गाँव से बाहर। पूजा बहुत खुश थी, आजादी मिल गयी थी। वह कहीं भी जा सकती थी। उसने मुजफ्फरपुर पहुँचते ही टीचर जी को नमस्ते कहा और कुछ पैसे देकर विदा ली। टीचर भौंचक्का। बुक्का फाड़ कर रो पड़ा-

"आपने मेरा इस्तेमाल किया...मेरा जीवन बरबाद...आपके घर वाले मुझे नहीं छोड़ेंगे...मैं भी आपके साथ दिल्ली

चलता हूँ, दोनों मिल कर वहाँ नयी जिंदगी शुरु करेंगे..."

पूजा कुमारी ने उनके पैर पकड़ लिए... अपने सपनों की दुहाई दी। पूरा जीवन खोलकर

रख दिया। टीचर को दया आयी, उसने रात भर रुकने का इंतजाम कर दिया। सुबह वाली ट्रेन पकड़ कर वह दिल्ली कूच करने वाली थी। मुजफ्फरपुर स्टेशन पर वैशाली एक्सप्रेस लगी हुई थी। पूजा हमेशा के लिए पुरानी जिंदगी से आजाद हो रही थी। अपने शहर को आँख भर देखा, आँखें छलछला आयीं। बिना किसी सामान के वह ट्रेन में चढ़ने जा रही थी...टीचर दूर खड़ा बेबस नजर आ रहा था। उसकी आँखों में क्या था, पूजा भाँप न सकी। बोगी में अंदर अपनी सीट ढूँढती हुई जब पहुँची तो एक बार फिर गश खा कर गिर गयी। किस्मत ने दूसरी बार धोखा दिया था। साक्षात पतिदेव सीट पर बैठे थे। साथ में पूजा कुमारी के मामा। दिलजले आशिक का कहर इस तरह टूट पड़ा था। जिंदगी फिर वहीं गाँव के उस घर में लौट आयी। पहले से बदतर, कैदखाने में दस साल कटे। जब बच्चे बड़े हुए तो उनकी पढ़ाई के लिये मुजफ्फरपुर की जगह मोतिहारी का चयन किया गया, पूरा मोहल्ला जान पहचान वालों का था। पतिदेव गाँव से आना-जाना करते थे। पूजा बच्चों में रम गयी थी और गणित भूल चुकी थी। पूजा कुमारी की कहानी संक्षेप में सुन कर मुझे लगा रुपहले परदे पर कोई फिल्म चल रही थी, उसका शो खत्म हुआ। मुझे अब यहाँ से जाना चाहिए।

"क्या अब भी भागने का हौसला बाकी है आप में...?"

मेरे मुँह से इतना ही निकला।

"उस दिन आप लोग हमको पसंद कर लेतीं तो भागने की नौबत बार-बार न आती... हम सेट हो गये रहते। हम क्या इतने बदसूरत थे, आपके भाई के लायक नहीं थे, हमने आपके भाई को देखा था, वे तो हमसे कमतर लगे। फिर क्यों हमको छाँटा..."

"तो हम कसूरवार...?"

"पूरा समाज...जाने कितनी लड़कियाँ भेड़-बकरी की तरह ब्याह दी गयीं, उनसे पूछा तक न गया, कितनी छाँट दी गयीं, कितनों के अरमान मिट्टी में मिल गये, कितनी सुंदर लड़कियाँ कैसे कैसे बदसूरत लड़कों से ब्याह दी गयीं, आपको अंदाजा है कुछ...?

आप जैसी औरतों ने ही छाँटा है लड़कियों को..."

"अब किस चीज की तलाश है आपको, क्यों कर रही हैं ये सब...? क्यों खतरा मोल ले रही हैं?"

"बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता बहिन..."

पूजा कुमारी उर्फ पूजा देवी झिलमिलाती हुई उठी। सलमा सितारा जड़ी साड़ी झमकी। आँखों में दर्द का लहरा था और अरमानों की चिताएँ जल रही थीं। मेरे पैर सौ-सौ मन के भारी हो गये थे। कई छायाओं ने मुझे दबोच

लिया था। मेरे बदन में कोई रस्सी-सी कसने लगी थी। कंधे भारी होकर दुखने लगे, मानो बेताल लटक गया हो। मेरे पास कुछ भी कहने को नहीं था। किसी सवाल का कोई जवाब नहीं था। दूर से दीदी की आवाज आ रही थी...बदली हुई आवाज, जिसमें कई-कई आवाजों का कोरस था। पता नहीं, सारी आवाजें मुझे ही क्यों खोज रही थीं...!

-गीताश्री

सोनम यादव

फतेहगढ़, जनपद फर्रुखाबाद में जन्मीं तथा वर्तमान में गाजियाबाद में रह रहीं सोनम, अँग्रेजी साहित्य में एम. ए. हैं, और हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं- गीत-नवगीत, हाइकु, हाइबुन, ग़ज़ल, दोहा, माहिया, मुकरी, संस्मरण, यात्रा वृतांत, कहानी, लघुकथा में सृजनरत हैं। अनेक समवेत संकलनों तथा देश-विदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपकी सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक साहित्यिक/ सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित/ पुरस्कृत किया जा चुका है।

ईमेल - sonam.yadav1967@gmail.com

गीत/नवगीत

-सोनम यादव

1.

गगन के जाना जिनको पार

सीमाओं में कहाँ बँध सके
प्रतिभाओं के तार
गगन के जाना इनको पार!

लिये हाथ में
श्रम की लाठी
रच लेते ये
नव परिपाटी
सपने आसमान के
लेकिन
पाँव तले रहती है माटी
अपनी कूवत से कर लेते
सात समंदर पार
गगन के जाना इनको पार
सीमाओं में...

चाँद तोड़
अमृत निचोड़ लें
बरसाती जलधार मोड़ दे
टूटे हुए शिकारे,कश्ती
जब चाहें ये,
उन्हें जोड़ दें
पाँव
वक्त के सिर पर रखने को
हरदम तैयार
गगन के जाना इनको पार
सीमाओं में...

ये संघर्षों का
प्रतिफल हैं
महाउदधि में
मीठा जल हैं
नैराश्यों के बियाबान में
एकमात्र

ये ही सम्बल हैं
ये प्रलयी अंधड के आगे
भरते हैं हुँकार
गगन के जाना इनको पार
सीमाओं में...

2.
कंक्रीट के महानगर में

कंक्रीट के महानगर में
सिमट रहे हैं लोग
कुनबा, घर,
परिवार बिखरते
कैसा ये संयोग !

अपनापन
अब काट रहा है
बाहर सुख-दुख
बाँट रहा है
भाई झगड़े,
अलग हो गये
आँगन पड़ा
उचाट रहा है
प्रेमभाव
स्वारथ में बदला
ये कैसा दुर्योग
कंक्रीट के...

दादा-नाना हुए पराये
चाचा-मामा सब समझौते
किससे कैसे
मतलब हल हो
बदलें वैसे
रोज मुखौटे
कौन किसी पर
करे भरोसा
बिना रीढ़ के लोग
कंक्रीट के...

सब
अपने-अपने में खोये
जाग रहे
या सोये-सोये
जाने कैसी फसल उगी है
कैसे बीज
वक़्त ने बोये
वाट्सप और
फेसबुक पर ही
बतियाते अब लोग
कंक्रीट के महानगर में
सिमट रहे हैं लोग
कुनबा, घर,
परिवार बिखरते
कैसा ये संयोग

-सोनम यादव

किशोर श्रीवास्तव

उत्तर प्रदेश में जन्में और केंद्र सरकार में प्रथम श्रेणी राजपत्रित अधिकारी किशोर श्रीवास्तव, 'राजभाषा विस्तारिका' एवम भारत सरकार की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'समाज कल्याण' में बतौर संपादक कार्यरत रहें हैं। गायन, काव्य, अभिनय में रुचि सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कार्टूनिस्ट और स्तंभ लेखक के कार्य के साथ ही अनेक लघु फिल्मों के निर्माण में भी सतत संलग्न। बाल साहित्य, लघुकथा, व्यंग्य, कहानी और कार्टून की लगभग 15 पुस्तकें प्रकाशित। रेड एण्ड व्हाईट राष्ट्रीय बहादुरी पुरस्कार सहित साहित्य, संगीत आदि के क्षेत्र में अनेक पुरस्कार/सम्मान प्राप्त।

ईमेल : kishor47@live.com

1. फर्ज़

-किशोर श्रीवास्तव

घायल मरीज़ को दिखाने के बहाने वह आतंकवादी उस डाक्टर को मोटर साइकिल पर बैठा कर अँधेरी रात में भाग निकला था। वह उसका अपहरण कर उससे फिरौती में तगड़ी रकम वसूलना चाहता था। जब डॉक्टर को सच्चाई का पता चला तो वह उसकी पकड़ से छूटने की कोशिश करते हुए चीखने-चिल्लाने लगा।

शोर सुनकर राह से गुज़रते हुए एक पुलिसवाले की नज़र उन पर पड़ी तो उसने आतंकवादी पर गोली चला दी। परन्तु उस आतंकवादी ने घायल होने के बावज़ूद डॉक्टर और मोटर साइकिल से अपनी पकड़ ढीली नहीं होने दी।

अंततः गंतव्य तक पहुँचते ही उसकी मोटर साइकिल से पकड़ कुछ ढीली हुई और वह लड़खड़ाकर फर्श पर गिर पड़ा।

रात भर उसे होश न रहा। सुबह जब उसे होश आया तो उसने अपने आपको बिस्तर पर पड़ा पाया। उसके शरीर पर जगह-जगह पट्टियाँ बँधी हुई थीं, और इधर-उधर अनेक दवाइयाँ बिखरी पड़ी थीं।

उसने आश्यर्चचकित होकर डॉक्टर की ओर देखा और उसके सामने सवालों की झड़ी लगा दी, 'तो क्या तुम रात भर यहीं रहे, मुझे बेहोश पाकर तो तुम भाग भी सकते थे, क्या तुम्हें अपनी जान का खतरा तनिक भी महसूस नहीं हुआ?'

'हाँ... और शायद नहीं भी..., दरअसल जिस तरह से तुम बेकसूरों को मारने के अपने पेशे से बँधे हुए हो, उसी तरह से मैं किसी घायल को इस तरह से असहाय छोड़कर न भागने के अपने फर्ज़ से बँधा हुआ था।' डॉक्टर ने जवाब दिया।

आतंकवादी भौचक्का हो डाक्टर को निहारता रह गया था।

2. विश्वास की रक्षा

पूरे डिब्बे में वह अकेला ही था। उसके आसपास काफी कीमती सामान बिखरा पड़ा था। ट्रेन पूरी रफ्तार से आगे बढ़ी चली जा रही थी। एक स्टेशन पर ट्रेन रुकी तो खिड़की से दो उठाईगीरों की नज़र उस डिब्बे में अकेले खर्राटे भरते हुए उस व्यक्ति पर पड़ी। उसे देखकर उनकी आँखें चमकीं। एक ने दूसरे से फुसफुसाकर कहा, 'चल बे, मौका अच्छा है, इसी के सामान पर हाथ साफ करते हैं।'

और फिर वह दोनों उस डिब्बे में घुस आये।

उनके डिब्बे में घुसते ही अचानक उस व्यक्ति की नींद खुल गयी। शायद उसे शौचालय जाना था। उसकी नज़र जब उन उठाईगीरों पर पड़ी तो उनकी चाल से अनभिज्ञ उसे कुछ सुकून सा महसूस हुआ। उसने उनसे अनुरोध किया, 'कृपया मेरा सामान देखते रहें, कोई इन पर हाथ न साफ कर दे... मैं अभी शौचालय से होकर आता हूँ।' और फिर वह शौचालय की ओर बढ़ गया था।

उठाईगीरों में से एक ने दूसरे से कहा, 'गुरू, मौका अच्छा है... चल साफ कर दें हम इसका सामान।' पर दूसरे ने उसे रोक दिया था।

दस मिनट बाद जब वह व्यक्ति वापस आया तो दोनों उठाईगीर उसे वहीं बैठे दिखलायी पड़े। वह उन्हें धन्यवाद देते हुए अपनी सीट पर बैठ गया था। अगले ही स्टेशन पर दोनों उठाईगीर डिब्बे से उतर कर बाहर चले गये थे।

डिब्बे से बाहर आते ही पहले ने दूसरे उठाईगीर को कोसते हुए उससे पूछा, 'क्यों बे, तूने इतना अच्छा मौका हाथ से क्यों जाने दिया?'

'क्योंकि उसने हम पर विश्वास किया था। हम उठाईगीर अवश्य हैं पर विश्वासघाती तो नहीं।' दूसरे ने जवाब दिया।

-किशोर श्रीवास्तव

Vandana Kumari , 'Solidarity'
30"x22", Charcoal on paper, 2022

साहित्यिक धरोहर के अन्तर्गत अनन्य के इस अंक में हिंदी साहित्य की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' (1913) अंक में प्रकाशित पूर्णसिंह जी के ऐतिहासिक महत्व के लेख "अमेरिका के मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन" को अनन्य के सुधी पाठकों के लिए प्रकाशित कर रहे हैं। लेख को मूल रूप में ही दिया जा रहा है, वर्तनी आदि में किसी प्रकार का सुधार नहीं किया गया है।

-संपादक

अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन (Walt Whitman)

-पूर्णसिंह

अमेरिका के लम्बे-लम्बे हरे देवदारों के घने वन में वह कौन फिर रहा है? कभी यहाँ टहलता है कभी वहाँ गाता है। एक लम्बा ऊँचा वृद्ध युवक, मिट्टी गारे से लिप्त, मोटे वस्त्र का पतलून और कोट पहने, नंगे सिर, नंगे पाँव और नंगे ही दिल अपनी तिनकों की टोपी मस्ती में उछालता, झूमता जा रहा है। मौज आती है तो घास पर लेट जाता है। कभी नाचता कभी चीखता और कभी भागता है। मार्ग में पशुओं को हरे तृण का बोझ उड़ाते देख आनन्द में मग्न हो जाता है। आकाशगामी पक्षियों के उड़ान को देख हर्ष में प्रफुल्लित हो जाता है। जब कभी उसे परोपकार की सूझती है तब वह गोल-गोल श्वेत शिव-शंकरों को उठा-उठाकर नदी की तरंगों पर बरसाता है। आज इस वृक्ष के नीचे विश्राम करता है, कल उसके नीचे बैठता है। जीवन के अरण्य में वह धूप और छाँह की तरह विचरता चला जाता है। कभी चलते-चलते अकस्मात ठहर जाता है मानो कोई बात याद आ गयी।

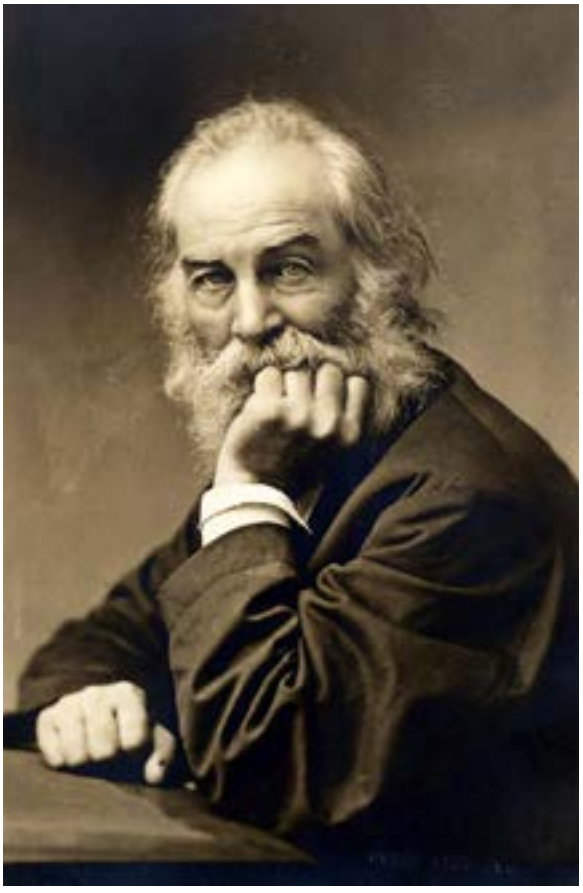

वाल्ट ह्विटमैन *(Walt Whitman)*

बार-बार गर्दन फेर-फेर और नेत्र उठा-उठाकर वह सूर्य को ताकता है। सूर्य की सुनहली सोहनी रोशनी पर वह मरता है। समीर की मन्द-मन्द गति

के साथ वह नृत्य करता है, मानो सहस्त्रों वीणायें और सितार उसको पवन के प्रवाह में सुनाई देते हैं। इस प्राकृतिक राग की आँधी के सामने मानुषिक राग, दिनकर के प्रकाश में टिमटिमाती हुई दीप-शिखा के समान तेजोहीन प्रतीत होते हैं। इसके भीतर बाहर कुछ ऐसी मधुरता भरी है कि चंचरीक के समूह के समूह उसके साथ-साथ लगे फिरते हैं। उसके हृदय का सहस्त्रदल ब्रह्म-कमल ऐसा खिला है कि सूर्य और चन्द्र भ्रमरवत् उस विकसित कमल के मधु का स्वाद लेने को जाते हैं। बारी-बारी से वे उसमें मस्त होकर बन्द होते हैं और प्रकाश पाकर पुनः बाहर आते हैं।

उस सुन्दर धवल केशधारी वृद्ध के वेश में कहीं न्यागरा की दूध धारा तो नहीं फिर रही है? यह मस्त वनदेव कौन है। चलता इस लटक से है मानों यही इस वन का राजा या गन्धर्व है। पत्ता-पत्ता, कली-कली, नली-नली, डाली-डाली, तने-तने को यह ऐसी रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखता है मानों सब इसी के दिलदार और यार हैं। सामने से वे दो कृषक-महिलाएँ दूध की ठिलियाँ उठाये गाती हुई आती हैं। क्या ही अलौकिक दृश्य है। औरों को तो ये दो अबलायें अस्थि और माँस की पुतालियाँ ही प्रतीत होती हैं, परंतु हमारे मस्तराम की आश्चर्य भरी आँखों को वे केवल बाँस की पोरियाँ ही दीखती हैं। उसकी निगूढ़ दृष्टि उनसे लड़ी। वे दोनों इस वृद्ध-युवक को आवारा समझ कुछ खफा हुईं, कुछ शरमाईं और कुछ मुसकराईं। उसने उनके मतलब को जान लिया। वह हँसा, खिलखिलाया और सलाम किया। नयनों से कुछ इशारे किये, आँसू बहाये। किसी की प्रशंसा की, कोई याद आाया, किसी से हाथ मिलाया और उसे दिल दे दिया। यह दृश्य हमारे मस्त कवि का एक काव्य हुआ।

ये दो खोखले वृक्ष, केश बदल कर और वृद्ध स्त्रियों का रूप बनाकर सामने नजर आये। वे दोनों वृद्धायें हाथ में हाथ मिलाये कुछ अलापती जा रही हैं। उसने जिन दो पूर्व युवतियों, हुस्न की परियों, विकसित कलियों को देखकर अपना काव्य-प्रवाह बहाया था उसी पवित्र काव्य गंगा को वृक्षों के चरणों में ही छोड़ दिया। वह सौन्दर्य का कितना बड़ा पुजारी है। वह हर वस्तु में सुन्दरता ही सुन्दरता देखता है। क्यों नहीं, तत्ववित् है न। उसके अनुभव में आया है कि उसकी एकमात्र प्यारी नाना रूपों में प्रत्यक्ष हुई है। प्रत्येक वस्तु सुन्दर है क्या बाँस की लम्बी-लम्बी पोरियाँ और क्या वट के खोखले तने। या तो संसार की दृष्टि ही अपूर्ण है, या मेरी ही दृष्टि मदमाती है। उनमें अन्तर अवश्य है। जो आँख हर आँख में अपने ही प्यारे को देखती है वह भला तुम्हारे कला के पैमानों के कारागार में कैसे बन्द हो सकती है। वस सौन्दर्य का सच्चा पुजारी यही है। यह सबको सदा यही सुनाता है।

--"तुम भले जुम झले"।

अमेरिका के वन में नहीं, जीवन के अरण्य में यह कौन जा रहा है, यह प्रकृति का वंभोला है कौन? यह वन का शाहदौला है कौन? यह इतना शरीफ अमीर होकर ऐसा रिन्द फ़क़ीर है कौन? अमेरिका के वही मूर्ख, तत्त्वहीन, मशीन रूप नरक में यह जीता-जागता ब्रह्मज्ञान रूपी स्वर्ग कौन है? इसकी उपस्थिति मात्र से मनुष्य की आभ्यन्तरिक अवस्था बदल जाती है। अमेरिका की वहिर्मुख सभ्यता को लात मारकर

बिरादरी और बादशाह से बागी होकर, कालीनों को जलाकर, महलों में आग लगाकर यह कौन जाड़ा मना रहा है? प्रभात की फेरी वाला, जंगल का योगी, अमेरिका का स्वतंत्र और मस्त फक़ीर वाल्ट ह्विटमैन अपनी काव्य-रचना करता हुआ जा रहा है।

वह कोमल और ऊँचे लंबे और गहरे, स्वरों में एक सँदेशा देता जा रहा है। सभ्यता के नगरों से यह योगी जितनी ही दूर होता जाता है, उसका स्वर उतना ही गम्भीर होता जाता है।

वास्तव में मनुष्य स्वतंत्रताप्रिय है। किसी प्रकार के दासपन को वह नहीं सह सकता। आजकल अमेरिका में लोग अमीरी से तंग आ गये हैं। उनकी हँसी एक प्रकार को मिस्सी है। जो किसी को मुख दिखाता हुआ झट मल ली। वहाँ घर और वस्त्रों को कफ़न और कब्र बनाकर मनुष्य जीवन का प्रवाह दबाया जाता है। चमकता हुआ कल्दार ही इस बाह्य जीवन को स्थित रखने का वहाँ खुदा है। जैसे भारतवासी फोटो उतरवाते समय ओठों और मूँछों के कोण और कोटों के किनारे सँभालते हैं उसी तरह आधुनिक कलदार सभ्यता। (***Dollar Civilisation***) में जीते-जागते मनुष्यों को सुन्दर फोटो रूप बनकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनके आचरण हृदय प्रेम की ताल में तुले नहीं होते, वे कृत्रिम होते हैं। वहाँ काव्य के नृसिंह भगवान् ह्विटमैन ने अपने उच्च नाद से हिन्दुओं की ब्रह्म विद्या और ईरान की सूफी विद्या को एक ही साथ घोषित किया है। वाल्ट ह्विटमैन के मत में वह मनुष्य ही क्या जो ब्रह्मनिष्ठ नहीं। वह मनुष्य के जीवन में एक मनुष्य का जीवन देखता है। उसके काव्य का यह प्रवाह आकाशवत् सार्वभौम है। जैसे आकाश समस्त नक्षत्र आदि को उठाये हुए है। उसी तरह उसका काव्य सब चर और अचर, नर और नारी को चमकते-दमकते तारों की तरह अपने में लपेटे हुए है। वह सबके मन की कहता है और सब उसको मन की बात बताते हैं। गरीबों को अमीर और अमीरों को गरीब करनेवाला कवि यही है। अपने आनन्द की मस्ती में उसे काव्य की तुकबन्दी भी बन्धन प्रतीत होती है। वह प्रत्येक दोहे-चौपाई को पिङ्गल के नियम की तराजू में नहीं, किन्तु अपने हृदयानंद के ताल में तोलता है। जो लोग मिस्र के पिरामिड को उत्तम कला-कौशल का नमूना मानते हैं। उनकी सुन्दरता

आनन्द काव्य

ओ: कैसे रचूँ आनन्द भरी, रस भरी, दिल भरी कविता
राग भरी, पुंस्त्व भरी, स्त्रीत्व भरी, बालकत्व भरी,
संसार भरी, अन्नभरी, कल भरी, पुष्प भरी ॥1॥

ओ:! पशुओं की ध्वनि लाऊँ, मछलियों की फुर्ती,
और उनके तुले हुए तैरते शरीरों को लाऊँ।
चारों ओर हो विशाल समुद्र का जल, खुले समुद्र पर हो
खुले बादलों, और चले हमारी नैया ॥2॥

ओ:! आत्मानन्द का दरिया टूटा, पिजड़े टूटे,
दीवारें टूटीं, घर बह गये और शहर बह गये।
इस एक छोटी पृथ्वी से क्या होता है ? लाओ दे दो सब
नक्षत्र मुझे, सब सूर्य मुझे, और सब काल मुझे ॥३॥

**

ओ:! इस अनादि भौतिक हृदय पीड़ा को- इस प्रेम दर्द को-
दरसाऊँ कैसे अपनी कविता में ।
कैसे बहाऊँ उस आत्मगंगा के नीर को;
कैसे बहाऊँ प्रेमाश्रुओं को अपनी कविता में ॥४॥

देखने की दृष्टि परदानशीनों की सी है। प्रकृति के बाह्य अनियमित दृश्य इन परदानशीनों के नियमित दृश्यों से कहीं बढ़-चढ़कर हैं। जो भेद समुद्र की छाती के उभार के प्रेमियों और एक युवती के वक्षस्थल के उभार के प्रेमियों में है, वही भेद ह्विटमैन के सदृश स्वतंत्र काव्य-प्रेमियों और तुकबन्दी के प्रेमियों में है। बाग़ बनाना तो मानुषी कला है, और जङ्गल बनाना दिव्य कला है। चित्र बनाना तो जीतों को मुर्दा बनाना है और मुर्दा प्रकृति को जीवित संसार बना देना ब्रह्म-कला है। और कवि तो केवल चित्र बनाते हैं परन्तु यह कवि जीते-जागते प्राणियों को अपने काव्य में भरता है। नीचे हम वाल्ट ह्विटमैन की पोयम्स आ जॉय ***(Poems of Joy)*** नामक कविता के कुछ खण्डों का तरजुमा नमूने के तौर पर देते हैं।

जो पृथ्वी है सो हम हैं, जो तारे हैं सो हम है ओ हो ! कितनी देर हमने उल्लुओं के स्वर्ग में काट दी।

हम शिला हैं पृथ्वी से धँसे हैं हम खुले मैदान हैं साथ-साथ पड़े हैं, हम हैं दो समुद्र जो आन मिले हैं।

पुरुष का शरीर पवित्र है, स्त्री का शरीर पवित्र है। फूलों का शरीर पवित्र है, वायु का शरीर पवित्र है, जल पवित्र है, धरती पवित्र है, आकाश पवित्र है, गोबर और तृण की झोपड़ी पवित्र है, प्रेम पवित्र है, सेवा पवित्र है, अर्पण पवित्र है। लो अब अपने आपको तुम्हारे हवाले करता हूँ। कोई भी हो, तुम सारी दुनिया के सामने मेरे हो रहो।

...

-पूर्णसिंह

(1913 की सरस्वती पत्रिका से साभार)

रवीन्द्र त्रिपाठी

ग्राम- रजवाडीह, डाल्टनगंज, पलामू, (झारखंड) में जन्मे और प्रिंट एवं टीवी माध्यमों के वरिष्ठ पत्रकार रवींद्र त्रिपाठी साहित्य, फिल्म, कला और रंगमंच से जुड़े संस्कृतिकर्मी, आलोचक, नाटककार, स्तंभकार, स्क्रिप्ट लेखक और संपादक हैं। पांच नाटक लेखन सहित एक व्यंग्य पुस्तक- 'मन मोबाइलिया गया है' प्रकाशित। हिन्दी अकादमी, दिल्ली से साहित्य- सम्मान प्राप्त।

ईमेल - tripathyravindra@gmail.com

सांस्कृतिक बहुलता और द्वैवार्षिकी

-रवीन्द्र त्रिपाठी

"इस प्रदर्शनी में कौन-कौन सी कलाकृतियाँ शामिल थी ये सब आज याद नहीं किया जाता है। याद ये किया जाता है कि- 'फाउंटेन' के साथ क्या हुआ और किस तरह आगे चलकर मार्सेल डुचैम्प को इसकी कई अनुकृतियाँ बनानी पड़ी क्योंकि मूल कही खो गया। 'फाउंटेन' उस प्रदर्शनी का सबसे यादगार स्मृति चिह्न है जो उसमें शामिल ही नही था।..."

"सांस्कृतिक बहुलत एक सांस्कृतिक-वैचारिक अवधारणा है जो मुख्य रूप से पिछली यानी बीसवीं सदी में जन्मी। इसके कई रूप या भंगिमाएँ हैं और मोटे तौर पर इसका मतलब ये है कि हर तरह की संस्कृति और रचनात्मकता का सम्मान किया जाए। हालांकि ये भी सही है कि इसे सही-सही परिभाषित करना न संभव है और न आवश्यक। हमें ये भी समझना चाहिए कि ये लगातार विकसित होनेवाली अवधारणा है। फिलहाल इतना समझ लेना ही पर्याप्त होगा कि कला या संस्कृति की दुनिया में बहुलता का मतलब यह है कि कला सृजन या उसके आस्वाद का कोई स्थायी सूत्र नही होता है। कला-सृजन (यहां इस लेख में कला से आशय पेंटिग, मूर्तिशिल्प, इंस्टॉलेशन, प्रिंट मेकिंग, फोटोग्राफी, वीडियो आदि से है) को किसी खास दृष्टिकोण से बाँधने की कोशिशें भी होती रही हैं लेकिन इतिहास में ये दर्ज है कि ऐसा पूरी तरह से कभी संभव नहीं हुआ। पाठ्य पुस्तकों में कला की परिभाषाएँ दी जाती रही हैं लेकिन कलाकार उनकी परवाह करे ये आवश्यक नहीं है। इसको बेहतर ढंग से समझने के लिए मार्सेल डुचैम्प *(Marcel Duchamp)* को याद करें। ये उनका ही कथन है कि- 'मैं कला में भरोसा नहीं करता। मैं कलाकारों में भरोसा करता हूँ।'

Marcel Duchamp's Fountain: How it went from the garbage heap to the top of the art pile

आप में से बहुतों को याद होगा कि आज के लगभग सौ साल पहले, 1917 में, न्यूयॉर्क में सोसाइटी ऑफ इनडिपेंडेन्ट आर्टिस्ट्स द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनी में (पहले फ्रॉंसीसी पर बाद में अमेरिकी नागरिक हो गए) कलाकार मार्सेल डुचैम्प (1887-1968) ने पोर्सिलिन से बने एक यूरिनल, जिसका नाम उन्होंने 'फाउंटेन' रखा था, का इंदराज कराया था। वैसे ये यूरिनल खुद उनका बनाया था या किसी और का, इस पर एक राय नही है। कुछ लोगों का ये भी कहना है कि मार्सेल डुचैम्प ने एक महिला कलाकार मित्र की तरफ से एक पुरुष उपनाम आर मट्ट (*R. MATT*) से इस 'फाउंटेन' का प्रदर्शनी में इंदराज कराया था। पर ये सब यहाँ अप्रासंगिक कि 'फाउंटेन' किसकी कृति थी। लोक स्मृति में ये मार्सेल डुचैम्प के नाम से दर्ज है। पर ये मसला भी उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्रासंगिक ये है कि 'फाउंटेन' बीसवी सदी के कला इतिहास में एक स्थायी जगह बना चुका है। इसलिए नहीं कि ये कोई महान कलाकृति है बल्कि इसलिए कि 'ये कला क्या है?'- इस बहस को तीखा बनाती है। 'फाउंटेन' को प्रदर्शनी में शामिल करना आयोजकों ने अस्वीकार किया था। हालांकि आयोजन के समय प्रविष्टियों को लेकर एक नियम बनाया गया कि जिस कलाकार ने प्रदर्शनी में शामिल होने के लिए शुल्क जमा किया है उसके काम को रखा जाएगा। पर ऐसा नहीं हुआ। फिर इस 'फाउंटेन' को जगह मिली दूसरी गैलरी में। आगे क्या-क्या हुआ ये किस्सा काफी लंबा है पर लब्बोलुबाब इतना है कि इस प्रदर्शनी में कौन-कौन सी कलाकृतियाँ शामिल थी ये सब आज याद नहीं किया जाता है। याद ये किया जाता है कि- 'फाउंटेन' के साथ क्या हुआ और किस तरह आगे चलकर मार्सेल डुचैम्प को

"मार्सेल डुचैम्प को फिर से याद करें। उन्होने लेओनार्दो दा विंची की विश्वप्रसिध्द कलाकृति `मोनालिसा' पर पैरोडी बनाते हुए उसमें मूँछें और बकरदाढ़ी जोड़ दी थी। इससे मूल `मोनालिसा' की अहमियत कम नहीं हुई। मार्सेल डुचैम्प ने सिर्फ यह दिखाया कि कलाकार का अपना `सेंस ऑफ ह्यूर' होता है और बीते जमाने को मजाकिया लहजे में भी देखा जा सकता है। ये भी कलाकार की आजादी का मसला है।..."

इसकी कई अनुकृतियाँ बनानी पड़ी क्योंकि मूल कही खो गया। 'फाउंटेन' उस प्रदर्शनी का सबसे यादगार स्मृति चिह्न है जो उसमें शामिल ही नही था। इसका क्या निष्कर्ष निकाला जाए?

फाउंटेन प्रकरण से क्या कला और कला आयोजन को लेकर नयी दृष्टि मिलती है? मेरे और बहुतों के लिए इस प्रश्न का जवाब हाँ है। आज जब हम सांस्कृतिक बहुलता और बोधगया द्वैवार्षिकी को लेकर बात कर रहे हैं तो यह प्रकरण स्वाभाविक रूप से मेरे जेहन में आता है। इसलिए कि वह इस बात को रेखांकित करता है कि कई बार कलाकार किसी आयोजन में नयी कल्पनाशीलता के साथ आता है और यह जरूरी नहीं कि कला के आयोजक उस दृष्टि को, स्वीकार करें। कला आयोजकों की अपनी दृष्टि होती है जो कई बार रूढ़ होती है। यह रूढ़ कलादृष्टि, किसी नये कलाकार को समझने में कई बार असमर्थ होती है। कला आयोजक भी इस का शिकार हो जाते हैं। कला का इतिहास यह बताता है कि फाउंटेन के साथ जो हुआ वह पहली बार ही किसी प्रदर्शनी में हुआ हो ऐसा नहीं है। कला की दुनिया में प्रभाववाद यानी इंप्रेसनिज्म का उदय भी पुराने पूर्वाग्रहों और नई दृष्टि के बीच टकराव के कारण हुआ, यह भी सर्वविदित है। उस टकराव के बाद ही नयी कला-दृष्टि को विश्वकला समुदाय की स्वीकृति मिली। आज ये सोचकर आश्चर्य ही होता है कि 1863 में 'सलोन द पेरिस' के आयोजकों ने एडुवर्ड माने की कलाकृति 'द लंचन ऑन द ग्रास' को प्रदर्शनी में सिर्फ इस आधार पर शामिल नहीं किया कि पेंटिंग में खुले

The Luncheon on the Grass, 1862
by Edouard Manet

में एक निर्वस्त्र (न्यूड)स्त्री के साथ दो पुरुष दिख रहे हैं। पुरानी कलादृष्टि में एक खास तरह का

शुद्धतावाद हावी था जिसे प्रभाववादियों ने चुनौती दी। इस वाकये ने विश्वकला का रास्ता बदल दिया। ऐसा नहीं है कि सिर्फ आयोजकीय दृष्टि नवोन्वेष को समझने में कई बार असफल रहती है। बल्कि आलोचकीय दृष्टि के साथ भी ऐसा होता है। आखिर आलोचक लुई लेरो ने 1874 में प्रभावादियों की समूह प्रदर्शनी में क्लॉद मोने

Impression Sunrise by Claude Monet
Dimensions: 48x63, 1872

की कलाकृति 'इंप्रेशन सनराईज' का मजाक ही उड़ाया था। ये दीगर बात है लेरो के उपहास के बाद ही 'इंप्रैसनिज्म' नाम चलन में आया और वह प्रभावशाली कला आंदोलन बन गया। हाँ, प्रभाववादियों में भी आगे चलकर मतभेद उभरे। ये जरूरी भी था क्योंकि एक नयी कलादृष्टि कुछ समय के बाद रूढियों का शिकार बन जाती है और अगली नवीन कलादृष्टि का पथ प्रशस्त करती है। इस तरह दृष्टियों की टकराहटें एक सतत प्रक्रिया है और कला में आंतरिक बदलाव का सशक्त माध्यम भी। मार्सेल डुचैम्प को फिर से याद करें। उन्होने लेओनार्दो दा विंची की विश्वप्रसिध्द कलाकृति 'मोनालिसा' पर पैरोडी बनाते हुए उसमें मूँछें और बकरदाढ़ी जोड़ दी

Marcel Duchamp's LHOOQ Mona Lisa with added moustache and beard , 1919

थी। इससे मूल 'मोनालिसा' की अहमियत कम नहीं हुई। मार्सेल डुचैम्प ने सिर्फ यह दिखाया कि कलाकार का अपना 'सेंस ऑफ ह्यूर' होता है और बीते जमाने को मजाकिया लहजे में भी देखा जा सकता है। ये भी कलाकार की आजादी का मसला है।

चर्चा के इस क्रम में मुझे एक और अमेरिकी कलाकार गॉर्डन माटा-क्लार्क (1943-1978) की याद आ रही है जिन्होंने प्रशिक्षण तो वास्तुशिल्प अर्थात् आर्किटेक्स्चर का पाया था लेकिन अपने काम से वो अनार्किटेक्स्चर की तरफ गए। माटा-क्लार्क की कलादृष्टि विध्वंस में भी निर्माण करती थी। वे पुराने भवनों को तोड़ते थे और तोड़ने के क्रम में उनको फिर से संयोजित

"ये भी मानता हूँ कि प्राचीन भारतीय कला के कई तत्व दूसरे देशों में गए और वहाँ की कला परंपराओं से जुड़कर उनको समृद्ध किया। पर मैं ये भी मानता हूँ कि कला दृष्टि की सृजनात्मकता किसी एक देश या स्थान में नहीं ठहरती। वह ठहर जाए तो उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। वह चलती जाती है, दूसरी धाराओं में मिलती हुई और उनको अपने में मिलाती हुई।..."

करते थे। पुराना भवन तो बना रहता था लेकिन उसके बनावट में तब्दीली आ जाती थी और उसकी दीवारों या खिड़कियों में फ़र्क आ जाते थे। इस तरह से 'निर्मित' गॉर्डर्न माटा-क्लार्क का प्रसिद्ध ..स्प्लिटिंग (*splitting*) है जो न्यू जर्सी में है। दुनिया के दूसरे शहरों में भी माटा-क्लार्क के इस तरह के अनार्किटेक्स्चर मिलते हैं। पिछले दिनों भारत के वरिष्ठ कलाकार विवान सुंदरम ने भी इसी से मिलता जुलता एक प्रयोग कसौली में किया जिसका मैं प्रत्यक्षदर्शी रहा। विवान ने बहुत पहले अपने कसौली स्थित आवास पर एक नाट्यशाला बनायी थी। कुछ प्रशासनिक वजहों से उनको इस नाट्यशाला को तोड़ना पड़ा। पर उसे तोड़ने की प्रक्रिया ऐसी नही थी कि राजमिस्त्री और कुछ मजदूर बुलाए और उसे तोड़ दिया। हालांकि राजमिस्त्री और मजदूर भी बुलाए गये लेकिन साथ ही इस मौके पर दूसरे सांस्कृतिक आयोजन भी हुए। अनुराधा कपूर और नीलम मानसिंह चौधरी जैसी वरिष्ठ रंग निर्देशिकाओं ने कुछ अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के साथ

Gordon Matta-Clark, Splitting: Exterior, 1974 / (95.2 x 150.5 cm.)

Anuradha Kapoor

Neelam Mansingh Chowdhry

मिलकर रंग-प्रस्तुतियाँ भी दीं, ध्वनि-प्रभाव पैदा करने के लिए तकनीकी विशेषज्ञ बुलाये गये और उस रंगस्थल पर पहले हुए नाटकों के वीडियो भी दिखाए गये और साथ ही इन सबकी, पूरे ध्वंस कार्यक्रम के साथ वीडियो रिकार्डिंग भी की गयी। यह सब भी अपने तरह का एक कलानुभव था जो कला इतिहास की किसी पुरानी पाठ्यपुस्तक में नहीं है। इसीलिए पाठ्यपुस्तकें भी लगातार बदलती रहती हैं।

हमारे देश औऱ समाज में ऐसे लोग भी हैं जो इतना सब सुनने या पढ़ने के बाद फट से आरोप लगा सकते हैं कि .ये सब जो मैं कह या लिख रहा हूँ वह पश्चिमी कलाकारों के संदर्भ मैं है और इनमें भारतीय-कला दृष्टि कहां है? इस सिलसिले मैं दो बातें कहना चाहूँगा।

एक तो यह कि मैं अपने आपको सच्चा भारतीय और देशभक्त मानता हूँ। क्लासिकी, भारतीय कला के आस्वाद में मेरी गहरी रुचि है और भारतीय कला परंपरा की गुणवत्ता में मुझे किसी तरह संदेह नहीं है। ये भी मानता हूँ कि प्राचीन भारतीय कला के कई तत्व दूसरे देशों में गए और वहाँ की कला परंपराओं से जुड़कर उनको समृद्ध किया। पर मैं ये भी मानता हूँ कि कला दृष्टि की सृजनात्मकता किसी एक देश या स्थान में नहीं ठहरती। वह ठहर जाए तो उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। वह चलती जाती है, दूसरी धाराओं में मिलती हुई और उनको अपने में मिलाती हुई। इसीलिए मैं कला की भारतीयता के साथ-साथ कला की अंतरराष्ट्रीयता का भी पक्षधर हूँ और मेरे हिसाब से अगर समकालीन भारतीय कला या कलाकारों ने दूसरे देशों की कला से अपना रिश्ता नहीं बनाया तो वे भी एक बिंदु पर ठहर जाएंगे और संकुचित हो जाएंगे। पश्चिम में जो है वह सिर्फ पश्चिम का नहीं बल्कि बाहर का भी है और भारत या एशिया में जो है वह सिर्फ भारतीय या ऐशियाई नहीं है। पश्चिमी

दृष्टि हो या भारतीय दृष्टि वह अपने में खाँटी नही हैं। सब जानते हैं कि आलू और मिर्ची लातीना अमेरिका से आए हैं और इनके बिना आज भारतीय भोजन की कल्पना नहीं की जा सकती। और भी कई भोज्य पदार्थ और व्यंजन हैं जो भारत से बाहर से आए हैं। उसी तरह पश्चिम का भोजन भी सिर्फ पश्चिमी सामग्रियों से नहीं बनता। हाल ही मेरे मित्र बने जर्मनी में अध्यापन कर रहे भारतीय अध्येता दिव्यराज अमिया ने मुझे बताया़ कि आज का पश्चिमी भोजन कई अफ्रीकी और एशियाई भोज्य पदार्थों के मेल से बना है। इसी तरह कला भी अंदर और बाहर दोनों से तत्व समेटती है। सब जानते हैं कि पिकासो की कला में अफ्रीकी तत्व भी हैं। जरा कला से हटकर साहित्य की तरफ बढ़े तो क्या दोस्तोवस्की या सर्वेंतीस जैसे लेखकों के बिना दुनिया के किसी देश में उपन्यास की कल्पना की जा सकती है? उसी तरह पिकासो या डाली के बिना आधुनिक कला की बात संभव नहीं। इसलिए दोस्तो, कला में देसी- विदेशी का झगड़ा बेमानी है और मेरे घर के घेरे में सूजा का भी स्वागत है और मोद्रियान का भी। यह दीगर बात है कि इनके मौलिक काम को खरीदने की मेरी हैसियत नहीं। लेकिन उनके काम के फोटोग्राफ तो रख ही सकता हूँ।

इस प्रसंग में दूसरी बात मैं रवीन्द्र नाथ ठाकुर के नाटक 'राजा' के एक गीत को याद करते हुए कहूँगा। गीत इस तरह है-

"वसंत क्या केवल खिले फूलों का मेला है?
क्या तुम सुखे पत्तों और झरे फूलों का खेल नहीं देखते?
क्या उठती लहरों के सुर में ही सागर का गान बजता है!
गिरती लहरों का सुर भी तो हर समय जागता रहता है!
मेरे प्रभु के चरणों तले क्या केवल मानिक जलते हैं?
लाखों माटी के ढेले भी उन चरणों में लोट के रोते हैं।
मेरे गुरु के आसन के पास सुबोध बालक हैं ही कितने?
अबोध को वह गोद बिठाते हैं, इसी से मैं उनका चेला हूँ
उत्सव के राजा झरे फूलों का खेल निहार रहे हैं!"

रवीन्द्र नाथ कहना चाहते हैं और मैं उनसे सहमत हूँ कि एक ऋतु, फूल, अमराई, नदी, पर्वत या मनुष्य के सौंदर्य़ को हम जिस तरह देखने के आदी हैं वही एकमात्र सौंदर्य-दृष्टि नहीं है। उनमें कुछ और खूबसूरती हो सकती है जिसे देखने के हम अभ्यस्त नहीं हैं। अभ्यस्त को तोड़ना कला सृजन और आस्वाद के लिए अनिवार्य है। वसंत मात्र खिले हुए फूलों का मेला नही है। इस मौसम में जो सूखे पत्ते होते हैं या झरे हुए फूल जमीन पर बिखरे हुए होते हैं वे भी वसंत की शोभा के विधायक हैं। शरद में पूर्ण चाँदनी के सौंदर्य का ही आस्वाद क्यों किया जाए। किसी और पहलू का क्यों नहीं। मेरे दृष्टिकोण में यही सौंदर्य़बोध और सौंदर्यरचना के प्रति बहुलतावादी दृष्टिकोण है।

-रवीन्द्र त्रिपाठी

पाठकीय प्रतिक्रियाएँ

1. अनन्य पत्रिका के मार्च-23 अंक की संपादकीय में व्योम जी ने, हिंदी के विस्तार के लिए छोटे-छोटे प्रयासों को महत्वपूर्ण बताया है। बैनरों, सूचनाओं एवं विज्ञापनों की वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को सुधारना, यह भी बड़ा योगदान है।

सुंदर नवगीतों, ग़ज़लों से सजे इस संकलन में सुधा ओम ढींगरा जी की कहानी, अमेरिका के एक परिवार के पालतू कुत्ते के प्रति स्नेह को, लेकर सुंदर प्रस्तुति है।

प्रेरणा गुप्ता जी की लघुकथाएँ प्रभावी हैं। प्रगति टिपणीस जी का लेख, शशि पुरवार जी का व्यंग्य ज्ञानवर्धक एवं रोचक हैं।

-शर्मिला चौहान
ठाणे (महाराष्ट्र)

2. अनन्य का अंक पढ़ा.

सुधा ओम ढींगरा जी की कहानी ने अंत तक जहाँ एक तिलिस्म में बाँधे रखा, वहीं प्रगति टिपणीस की कलम द्वारा विदुषी नतालिया झिलिज़नोवा से परिचय अद्भुत रहा.

सभी गज़लें और नवगीत स्तरीय लगे. संजीव गौतम जी की पुरकशिश गज़लों ने एहसासों के दरिया को रवानी दे दी.

रेखाओं के ज़रिये सम्मोहन रचने वाले जादूगर रमेश बिष्ट को जानना सुखद रहा. बहुत ही ख़ूबसूरती से जय त्रिपाठी जी ने उनसे उनकी कृतियों एवं रचना प्रक्रिया से परिचय करवाया.

आद. व्योम जी ने ज़रूरी मुद्दे पर प्रकाश डाला. हर दृष्टि से एक प्रभावपूर्ण अंक के लिए अनन्य की पूरी टीम को बहुत बहुत बधाई.

-सरस दरबारी
प्रयागराज

चित्रकार

वंदना कुमारी

दिल्ली में जन्मी और पेंटिंग विधा में बीएफए, एमएफए की डिग्री प्राप्त कर वंदना वर्तमान में ललित कला अकादमी, गढ़ी स्टूडियो, नई दिल्ली में शोधार्थी के रूप में कार्यरत हैं। वंदना की कलाकृतियाँ मानव स्थिति की विशिष्टता और मानस में अंतरदृष्टि प्रदान करती हैं। उनके अत्यधिक अभिव्यंजक कार्य उनके सामाजिक-राजनीतिक और विभिन्न लिंग-आधारित मुद्दों और समकालीन समाज की विशेषता वाली घटनाओं के विस्तृत अवलोकन को चित्रित करते हैं।

ईमेल - vndna4@gmail.com

चित्र और चित्रकार

चित्रकार : वंदना कुमारी
Artist: Vandana Kumari
Title: In Deep Fantashy
Size: 60”x54”, Acrylic on Canvas, 2022